परिवार के प्रकार
(TYPES OF FAMILY)

मानव-समाज तथा संस्कृति के विकास से सम्बन्धित प्रत्येक स्तर में परिवार का स्वरूप एकसमान नहीं रहा है। वास्तविकता यह है कि विभिन्न कालों में मानव की आवश्यकताएँ बदलते रहने तथा उसकी प्राकृतिक और सामाजिक दशाओं में परिवर्तन होते रहने के कारण विभिन्न कालों तथा विभिन्न स्थानों में परिवार का स्वरूप भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न देखने को मिलता है। परिवार के यह स्वरूप संख्या में इतने अधिक हैं कि उनका कोई सर्वमान्य वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। इसके पश्चात् भी विभिन्न आधारों पर डॉ. श्यामाचरण दुबे ने परिवार के प्रकारों को अग्रांकित प्रकार से स्पष्ट किया है :[3]

1. अधिकार के आधार पर (क) पैतृक परिवार

---

1 MacIver and Page, *Society*, p. 244.

(ख) मातृक परिवार

2. वंशनाम के आधार पर
(क) मातृवंशीय परिवार
(ख) पितृवंशीय परिवार
(ग) उभयवाही परिवार
(घ) द्विनामी परिवार

3. उत्तराधिकार के आधार पर
(क) पितृमार्गी परिवार
(ख) मातृमार्गी परिवार

4. निवास के आधार पर
(क) पितृस्थानीय परिवार
(ख) मातृस्थानीय परिवार
(ग) नवस्थानीय परिवार

5. वैवाहिक रचना और गठन के आधार पर
(क) एक-विवाही परिवार
(ख) बहु-विवाही परिवार
(ग) मूल परिवार
(घ) संयुक्त परिवार
(ङ) विस्तारित परिवार

उपर्युक्त वर्गीकरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवार के विभिन्न प्रकार सदस्यों की संख्या, संगठन, सत्ता, निवास-स्थान, वंशनाम तथा विवाह से ही सम्बन्धित हैं। इनमें से कुछ महत्वपूर्ण आधार पर परिवार के विभिन्न स्वरूपों की प्रकृति को इस प्रकार समझा जा सकता है :

(I) **सदस्यों की संख्या तथा संगठन के आधार पर**

परिवार का आकार छोटा है अथवा बड़ा तथा परिवार में संगठन की प्रकृति कैसी है, इसे ध्यान में रखते हुए परिवार के निम्नांकित तीन प्रकारों का उल्लेख किया जा सकता है :

(1) **केन्द्रीय अथवा मूल परिवार** (Nuclear Family) केन्द्रक अथवा मूल परिवार आकार में बहुत छोटे होते हैं। ऐसे परिवारों में साधारणतया पति-पत्नी तथा उनके अविवाहित बच्चों को ही सम्मिलित किया जाता है। कुछ समय पहले तक जनजातियों की कुछ विशेष सामाजिक तथा प्राकृतिक दशाओं के कारण उनके समाज में ऐसे परिवारों की संख्या बहुत कम थी। विभिन्न जनजातियाँ; जैसे, संथाल, थारू तथा 'हो' आदि जैसे-जैसे सभ्य समूहों के सम्पर्क में आती जा रही हैं, उनमें मूल परिवारों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। इसके पश्चात् भी जनजातियों में मूल परिवारों का रूप जटिल समाजों के मूल परिवारों से बहुत कुछ भिन्न है। जनजातियों में रक्त सम्बन्धों की प्रधानता होने के कारण मूल परिवार साधारणतया अपने विस्तृत परिवार से पूर्णतया पृथक् नहीं होते। यही कारण है कि जनजातीय पारिवारिक तथा सामाजिक व्यवस्था में मूल परिवारों को आज भी अधिक लाभप्रद नहीं समझा जाता।

(2) **विस्तृत परिवार** (Extended Family)—इन परिवारों का आकार मूल परिवारों से बहुत बड़ा होता है तथा इनकी प्रकृति बहुत कुछ संयुक्त परिवारों से मिलती-जुलती होती है। **डॉ. दुबे** के अनुसार, "विस्तृत परिवार की संज्ञा उस परिवार-संकुल को दी जाती है जो आनुवंशिकता से सम्बद्ध होते हुए भी विभिन्न इकाइयों के रूप में परिवारों में बँटा हो।"[1] दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि जब अनेक मूल परिवार एक साथ रहते हुए, उनमें

निकटता का सम्बन्ध हो तथा वे एक आर्थिक इकाई के रूप में कार्य करते हों, तब ऐसे परिवार को एक विस्तृत परिवार कहा जा सकता है। ऐसे परिवारों में भी एक संयुक्त निवास-स्थान तथा सम्मिलित सम्पर्क की विशेषताएँ पायी जाती हैं। इन परिवारों की प्रकृति और संगठन को पार्श्व चित्र द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत A, B, C, D, E तथा F मूल परिवार हैं जो सभी सामान्य वंश परम्परा से सम्बन्धित हैं। इन सभी मूल परिवारों से जिस बड़े परिवार का निर्माण होता है (जिसकी सीमा वृत्त द्वारा स्पष्ट होती है) उसी को विस्तृत परिवार कहा जाता है। विस्तृत परिवार को एक-पक्षीय परिवार (unilateral family) भी कहा जाता है, क्योंकि इसके अन्तर्गत सभी सदस्य एक ही वंश परम्परा से सम्बन्धित होते हैं। यह वंश परम्परा माता के नाम से भी सम्बन्धित हो सकती है और पिता के नाम से भी। यही तथ्य विस्तृत परिवारों को संयुक्त परिवारों से पृथक् कर देता है। संयुक्त परिवारों में केवल पितृ-पक्ष से सम्बन्धित अनेक पीढ़ियों के रक्त-सम्बन्धी एक घर में साथ-साथ रहते हैं जबकि विस्तृत परिवार में वंश परम्परा का पितृ-पक्ष से सम्बन्धित होना आवश्यक नहीं होता। भारत की बहुत अधिक जनजातियों में विस्तृत परिवारों का संगठन देखने को मिलता है। यह सच है कि जनजातियों में भी अब विस्तृत परिवार पितृवंशीय होते जा रहे हैं लेकिन गारो जनजाति तथा मालाबार के नायरों में आज भी मातृ-पक्षीय विस्तृत परिवारों की प्रधानता है।

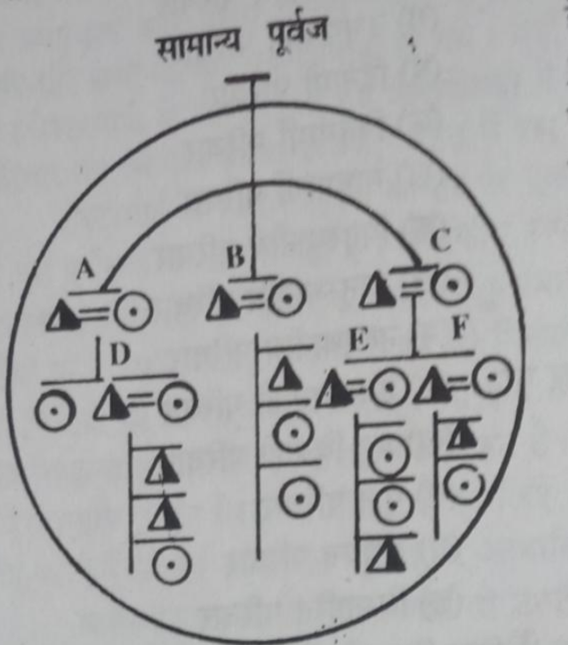

(II) विवाह के आधार पर

विवाह वह सर्वप्रमुख संस्था है जो परिवार को एक विशेष स्वरूप प्रदान करती है। इस दृष्टिकोण से विवाह के आधार पर सभी परिवारों को तीन मुख्य भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(1) **एक-विवाही परिवार** (Monogamous Family)—यह परिवार वे हैं जिनकी स्थापना पुरुष अथवा स्त्री द्वारा एक जीवन-साथी का चुनाव करके की जाती है। इसका तात्पर्य है कि ऐसे परिवारों में पुरुष अथवा स्त्री को एक जीवन-साथी के होते हुए किसी दूसरे से विवाह करने की अनुमति नहीं दी जाती। ऐसे परिवार आकार में बहुत छोटे होते हैं तथा उनका संगठन मूल परिवारों के समान होता है। वास्तविकता यह है कि कुछ समय पहले तक जनजातियों में एक-विवाही परिवारों की संख्या बहुत कम थी लेकिन आज उन जनजातियों की संख्या सबसे अधिक है जिनमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से एक-विवाही परिवारों को अधिक उपयोगी समझा जाता है।

(2) **बहुपत्नी विवाही परिवार** (Polygynous Family)—इन परिवारों की स्थापना एक पुरुष द्वारा अनेक स्त्रियों से विवाह करके की जाती है। साधारणतया जिन जनजातियों में पुरुषों

को अधिक अधिकार मिले हुए हैं अथवा पुरुष की तुलना में स्त्रियों की संख्या बहुत अधिक है, वहाँ ऐसे परिवार काफी संख्या में पाये जाते हैं। भौतिक रूप से सम्पन्न कुछ जनजातियों में भी बहुपत्नी विवाही परिवारों का प्रचलन पाया जाता है। भारत में नागा, बैगा, गोण्ड और लुशाई जनजातियों में आज भी बहु-पत्नी विवाही परिवारों की संख्या काफी अधिक है। ऐसे परिवारों में वंश परम्परा साधारणतया पितृ-पक्ष से सम्बन्धित होती है तथा यह परिवार पितृस्थानीय भी होते हैं। सभ्य समूहों के सम्पर्क से जैसे-जैसे जनजातियों में सामाजिक जागरूकता बढ़ रही है, ऐसे परिवारों की संख्या निरन्तर कम होती जा रही है।

(3) **बहुपति विवाही परिवार** (Polyandrous Family)—इन परिवारों की स्थापना एक स्त्री द्वारा अनेक पुरुषों से विवाह करके की जाती है। ऐसे पुरुष आपस में भाई-भाई हो सकते हैं अथवा एक स्त्री के विभिन्न पतियों के बीच कोई रक्त सम्बन्ध नहीं होता। इन परिवारों में स्त्री की प्रधानता होती है, इसलिए ऐसे परिवार मातृ-स्थानीय तथा मातृ-वंशीय भी होते हैं। स्त्री अपने पति के निवास-स्थान पर या तो बहुत कम जाती है अथवा बिल्कुल नहीं जाती है। सच तो यह है कि बहुपति विवाही परिवारों की स्थापना उन जनजातियों में अधिक होती है जो बहुत संघर्षपूर्ण प्राकृतिक दशाओं में जीवन व्यतीत कर रही होती हैं। कभी-कभी पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की संख्या बहुत कम होने के कारण भी बहुपति विवाही परिवारों का प्रचलन हो जाता है, यद्यपि ऐसा बहुत कम होता है। भारत की खस, टोडा, कोटा, टियान, कुसुम्ब तथा नायर जनजातियों में आज भी बहुपति विवाही परिवार प्रचुरता से देखने को मिलते हैं।

(III) सत्ता, स्थान तथा वंश-परम्परा के आधार पर

आदिम समाज की यह विशेषता है कि इनमें परिवारों के स्वरूप केवल सदस्यों की संख्या अथवा विवाह पर ही आधारित नहीं बल्कि विभिन्न परिवारों में सदस्यों को प्राप्त होने वाले अधिकारों, निवास-स्थान तथा वंश-परम्परा के आधार पर ही उनमें एक स्पष्ट भिन्नता देखने को मिलती है। सभ्य समाजों में जहाँ लगभग सभी पुरुष प्रधान होते हैं, वहीं आदिम अथवा जनजातीय समाजों में ऐसे परिवारों की संख्या भी कम नहीं है जिनमें परिवार से सम्बन्धित सभी अधिकार किसी स्त्री के हाथों में केन्द्रित होने के साथ ही विवाह के पश्चात् एक पुरुष अपनी पत्नी के निवास-स्थान पर जाकर रहता है। स्वाभाविक है कि ऐसे परिवारों में वंश-परम्परा भी पत्नी-पक्ष से सम्बन्धित होती है। इस दृष्टिकोण से सभी जनजातीय परिवारों को दो प्रमुख भागों में विभाजित करके उन्हें निम्नांकित रूप से समझा जा सकता है :

(1) **मातृसत्तात्मक परिवार** (Matriarchal Family)

मातृसत्तात्मक परिवार वह हैं जिनमें परिवार के समस्त अधिकार और नियन्त्रण-शक्ति स्त्रियों के हाथों में केन्द्रित होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, **राबर्ट ब्रिफाल्ट** तथा **बैकोफन** ने यह स्पष्ट किया है कि जनजातियों में सभी आरम्भिक परिवार मातृसत्तात्मक ही थे क्योंकि उस समय पुरुष शिकार करने अथवा आजीविका के दूसरे साधन ढूँढ़ने के लिए घर से बाहर ही रहता था जबकि परिवार का सम्पूर्ण संचालन स्त्रियों के द्वारा किया जाता था। मातृसत्तात्मक परिवारों की प्राचीनता इस तथ्य से भी स्पष्ट होती है कि अनेक पितृसत्तात्मक परिवारों में आज भी स्त्रियों को यौन और सामाजिक सम्पर्क के क्षेत्र में तब विशेष छूट मिल जाती है जब वे अपनी माँ के घर चली जाती हैं। उदाहरण के लिए, जौनसार बाबर क्षेत्र में रहने वाली जनजाति 'खस' में परिवारों का रूप पितृसत्तात्मक है। इस स्थिति में एक पत्नी के

रूप में स्त्रियों पर यौन से सम्बन्धित सभी प्रकार के नियन्त्रण हैं लेकिन अपने माता-पिता के घर जाने पर उसी स्त्री को यौन सम्बन्ध की पूर्ण स्वतन्त्रता मिल जाती है। यह उदाहरण यद्यपि मातृसत्तात्मक परिवारों की सार्वभौमिकता को स्पष्ट नहीं करता लेकिन इनकी प्राचीनता पर प्रकाश अवश्य डालता है। वास्तव में मातृसत्तात्मक परिवारों के अन्तर्गत साधारणतया वंश का नाम भी किसी स्त्री पूर्वज के नाम पर ही चलता है, इसलिए ऐसे परिवारों को मातृवंशीय परिवार भी कहा जाता है। इन परिवारों की प्रकृति को कुछ विशेषताओं के आधार पर समझना आवश्यक है :

(1) मातृसत्तात्मक परिवार स्त्री-प्रधान होते हैं। इनमें वंश का नाम किसी प्रमुख स्त्री से सम्बन्धित होता है, पुरुष से नहीं। इनकी प्रमुख विशेषता यह है कि बच्चों के गोत्र का नाम अपनी माता अथवा मातृ-पक्ष से सम्बन्धित किसी पुरुष के नाम पर ही आधारित होता है। विवाह के बाद साधारणतया पत्नी का गोत्र वही रहता है जबकि पति का गोत्र अपनी पत्नी के गोत्र के अनुसार परिवर्तित हो जाता है।

(2) ऐसे परिवार साधारणतया 'मातृस्थानीय' (matrilocal) होते हैं अर्थात् विवाह के पश्चात् स्त्री अपनी पति के घर नहीं जाती बल्कि पति को अपनी पत्नी के घर आकर वहीं की परम्पराओं के अनुसार रहना और कार्य करना होता है।

(3) मातृसत्तात्मक परिवारों की संरचना में सबसे प्रमुख स्थान कर्ता-स्त्री का होता है। इसके बाद पारिवारिक अधिकारों की दृष्टि से क्रमशः सबसे बड़ी विवाहित लड़की, कर्ता के भाई, कर्ता के पति और अविवाहित लड़कियों को स्थान दिया जाता है। इसका तात्पर्य है कि परिवार में पुरुष सदस्यों की तुलना में स्त्री सदस्यों की प्रस्थिति अधिक महत्वपूर्ण होती है।

(4) सम्पत्ति का अधिकार माता से उसकी पुत्रियों अथवा भाई के पुत्रों को प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, आसाम की खासी जनजाति में सम्पत्ति का उत्तराधिकार सबसे छोटी पुत्री को प्राप्त होता है तथा कर्ता-स्त्री के देहान्त के समय उसे ही दाह-संस्कार करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसके विपरीत, आसाम की जयन्तिया पहाड़ियों पर रहने वाली गारो जनजाति में सबसे बड़ी पुत्री को छोड़कर उत्तराधिकार किसी भी अन्य पुत्री को दिया जा सकता है।

(5) यदि कर्ता-स्त्री के कोई पुत्री न हो तब भी उत्तराधिकार पुत्र को प्राप्त नहीं होता बल्कि साधारणतया यह कर्ता-स्त्री की बहिन की पुत्री अथवा मातृ-पक्ष के किसी अन्य सदस्य को प्राप्त हो जाता है। कर्ता-स्त्री अपने वंश की किसी पुत्री को गोद लेकर भी उसे यह अधिकार दे सकती है।

(6) व्यावहारिक रूप से मातृसत्तात्मक परिवारों में भी अनेक कार्यों को करने के लिए पुरुष को ही प्रधानता दी जाती है लेकिन यह पुरुष कर्ता-स्त्री का पति न होकर बल्कि उस स्त्री का भाई होता है। विवाह-सम्बन्धों अथवा सम्पत्ति के विभाजन की दशा में बच्चों को अपने मामा की आज्ञा का पालन करना अधिक आवश्यक समझा जाता है।

(7) साधारणतया मातृसत्तात्मक परिवारों में दामाद से कर्ता-स्त्री के घर में ही रहने की आशा की जाती है लेकिन यदि किसी कारण वह पृथक् रहना चाहे तो उसे इसकी स्वतन्त्रता रहती है लेकिन वंश का नाम फिर भी पत्नी-पक्ष के अनुसार ही चलता रहता है।

(8) ऐसे परिवारों में सामाजिक तथा यौनिक क्षेत्र में स्त्रियों को तुलनात्मक रूप से कहीं

(2) **पितृसत्तात्मक परिवार** (Patriarchal Family)

पितृसत्तात्मक परिवार का तात्पर्य ऐसे परिवार से है जिसमें सभी पारिवारिक अधिकार व्यावहारिक रूप से कर्ता पुरुष तथा अन्य पुरुष सदस्यों के पक्ष में होते हैं। ऐसे परिवार पितृवंशीय (patrilineal) तथा पितृस्थानीय (patrilocal) भी होते हैं। इसका तात्पर्य है कि वंश का नाम किसी प्रमुख पूर्वज से सम्बन्धित माना जाता है तथा विवाह के पश्चात् पत्नी को पति के निवास-स्थान पर ही स्थायी रूप से रहना आवश्यक होता है। ऐसे परिवारों में बच्चों का परिचय उनके पिता के वंश के माध्यम से होता है और पिता से ही वे एक विशेष नाम ग्रहण करते हैं। वर्तमान स्थिति यह है कि आज अधिकांश जनजातियाँ पितृसत्तात्मक परिवारों में ही संगठित हैं तथा जो जनजातियाँ इसकी अपवाद हैं, वे भी बहुत तेजी से पितृसत्तात्मक विशेषताओं को ग्रहण करने के पक्ष में होती जा रही हैं। इस आधार पर यह आशा की जा

सकती है कि जैसे-जैसे जनजातियाँ सभ्य समाजों के सम्पर्क में आती जायेंगी; वे मातृसत्तात्मक परिवारों की विशेषताओं को छोड़कर पितृसत्तात्मक विशेषताओं को ग्रहण करती जायेंगी। वास्तव में पितृसत्तात्मक परिवारों की प्रकृति को इसकी निम्नांकित विशेषताओं के आधार पर सरलतापूर्वक समझा जा सकता है :

(1) यह परिवार इस अर्थ में पुरुष-प्रधान हैं कि परिवार का सम्पूर्ण संगठन, संचालन तथा श्रम-विभाजन किसी कर्ता पुरुष से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार कर्ता पुरुष की भूमिका एक मुखिया के समान होती है जिसकी आज्ञाओं की साधारणतया अवहेलना नहीं की जा सकती।

(2) यह परिवार पितृवंशीय तथा पितृस्थानीय होते हैं।

(3) सम्पत्ति का उत्तराधिकार पिता से उसके ज्येष्ठ पुत्र अथवा पुत्रों को प्राप्त होता है। वर्तमान सामाजिक विधानों के प्रभाव से अब पितृसत्तात्मक परिवारों की सम्पत्ति में पुत्रियों को भी पुत्रों के समान अधिकार प्राप्त हो गया है लेकिन व्यावहारिक रूप से यह अधिकार आज भी पुत्रों तक सीमित है।

(4) जनजातीय पितृसत्तात्मक परिवारों में पुरुष सदस्यों के अधिकार अधिक होने के कारण ऐसे परिवार या तो एकविवाही हैं अथवा बहुपत्नी विवाही। बहुपति विवाह को ऐसे परिवारों में कोई स्थान नहीं मिलता बल्कि इसे एक अनाचार अथवा सामाजिक अपराध के रूप में देखा जाता है।

(5) परिवार की संरचना में सदस्यों के अधिकार मुख्यतः नातेदारी, लिंग तथा आयु पर आधारित होते हैं। सबसे महत्वपूर्ण स्थान कर्ता पुरुष का होता है जबकि इसके बाद क्रमशः सबसे बड़े विवाहित पुत्र, कर्ता की पत्नी, अविवाहित पुत्रों और सबसे अन्त में अविवाहित पुत्रियों को स्थान दिया जाता है।

(6) जनजातियों में ऐसे परिवारों का आकार अधिक विस्तृत होता है। एक ही परिवार में साधारणतया चार-पाँच पीढ़ियों तक के रक्त-सम्बन्धी साथ-साथ रहते हैं तथा परिवार की सम्पत्ति का सम्मिलित रूप से उपयोग करते हैं।

(7) उपभोग तथा उत्पादन की इकाई के रूप में पितृसत्तात्मक परिवारों का रूप अधिक स्थायी होता है।

(8) जिन जनजातियों में किसी विशेष उपाधि अथवा सम्मानसूचक पद देने की परम्परा है, वहाँ इस उपाधि अथवा पद का हस्तान्तरण पिता से उसके सबसे बड़े पुत्र को हो जाता है।

(9) धार्मिक क्रियाओं तथा संस्कारों की पूर्ति में पुरुषों के अधिकार स्त्रियों की तुलना में अधिक होते हैं। इसी कारण धार्मिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए परिवार में पुत्र के जन्म को अधिक महत्व दिया जाता है।

जनजातियों के सन्दर्भ में परिवार के उपर्युक्त सभी प्रकारों के विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि परिवार का रूप चाहे जैसा भी हो, जनजातियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में परिवार का उतना ही महत्वपूर्ण स्थान है जितना कि सभ्य और जटिल समाजों में। विभिन्न जनजातियों में परिवार के रूप में जो विविधता दृष्टिगत होती है उसका कारण जनजातियों की कुछ विशिष्ट भौगोलिक तथा सांस्कृतिक दशाएँ हैं। सभ्य समाजों के सम्पर्क में आने के बाद भी अधिकांश जनजातियाँ अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं को बहुत कुछ स्थायी बनाये हुए हैं।